सृजना और आलोचना

संपादक
डॉ. चन्द्रलेखा

शिल्पायन
दिल्ली-110032

(यू.जी.सी. एकेडेमिक स्टॉफ कॉलेज, गोवा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आंशिक आर्थिक सहयोग से 'अन्तर्विधावर्ती–पुनश्चर्या पाठ्यक्रम 2007' हेतु प्रकाशित)

ISBN 978-81-89918-76-7

© सम्पादक

प्रकाशक
शिल्पायन
10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क,
शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174

मूल्य
300.00

संस्करण
2010

आवरण
उमेश शर्मा

शब्द-संयोजन
उमेश लेजर प्रिंट्स, दिल्ली

मुद्रक
रुचिका प्रिण्टर्स, दिल्ली-32

SRIJANA AUR ALOCHNA (Criticism)
edited by Chandralekha D'souza

मराठी दलित साहित्य : प्रेरणा और स्वरूप

डॉ. वासुदेव सावंत

दलित साहित्य मराठी साहित्य में एक अपूर्व घटना मानी जा सकती है जो समकालीन मराठी साहित्य का एक बहुचर्चित और महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। मराठी साहित्य को एक नया आयाम देकर उसे समृद्ध बनाने में दलित साहित्य आन्दोलन की भूमिका सर्वोपरि रही है, वह दलित साहित्य ही है जिसके कारण मराठी साहित्य को न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि कुछ हद तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी पहचान प्राप्त हुई है, दलित साहित्य कृतियों ने कुछ अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार और सम्मान प्राप्त किए हैं और अनुवादित रूप में वह कई विदेशी भाषाओं में भी स्थान प्राप्त कर चुकी है।

1990 के बाद मराठी साहित्य में एक परिवर्तन का दौर आया है। यद्यपि हमारे कुछ बुजुर्ग आलोचक इस परिवर्तन को ठीक तरह से समझ नहीं पाए हैं। किन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ में इस परिवर्तन की मौलिकताओं को रेखांकित करना नितांत आवश्यक है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मराठी में भी साहित्य का आधुनिकीकरण अंग्रेजी राज में हुआ। प्राचीन साहित्य परम्परा से अलग एक नई परम्परा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से शुरू हुई। लेकिन इस आधुनिकीकरण के साथ ही मराठी साहित्य किसी एक ही वर्ग विशेष के दायरे में सीमित हो गया और 1990 तक मराठी साहित्य मध्यमवर्गीय तथा उच्चवर्णीय संवेदनशीलता (Sensibility) के प्रभाव में रहा। इसके कारण आधुनिक मराठी साहित्य कतिपय मर्यादाओं से घिरा हुआ प्रतीत होता है। इन मर्यादाओं को तोड़ने का प्रयास बाद में हुआ। मराठी समाज के विविध स्तर और समूह साहित्य निर्माताओं की प्रक्रिया में सम्मिलित होने लगे। इसलिए मराठी साहित्य उच्चवर्ग के दायरे से बाहर आकर आशय, जीवन दृष्टि और साहित्य दृष्टि इन तीनों अंगों में बहुआयामी और व्यापक हो गया।

मराठी साहित्य को उच्चवर्णीय मानसिकता से मुक्त कराने में जिन साहित्य-आन्दोलनों की भूमिका प्रमुख रही है उनमें 'लघु नियतकालिक पत्रिका आन्दोलन' (लिटिल् मॅगेझिन्स या लघुपत्रिकाएँ), 'दलित साहित्य' और 'ग्रामीण

साहित्य' यह तीन आन्दोलन सबसे महत्वपूर्ण हैं। 'जनवादी साहित्य' जैसे अन्य कुछ आन्दोलन भी हैं जिनका प्रभाव सीमित ही रहा है। आजकल मराठी में देशीवाद की चर्चा भी साहित्य क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। 1990 के बाद निर्माण हुए इन सारे आन्दोलनों की एक समान विशेषता यह रही है कि ये सभी आन्दोलन प्रस्थापित साहित्य व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की आवाज उठाते रहे हैं। 'प्रस्थापित' के कारण मराठी साहित्य आशय, जीवन दृष्टि और साहित्य दृष्टि इन सभी अंगों में बदला है और बहुआयामी हुआ है। लघु पत्रिकाओं के आन्दोलन के द्वारा आधुनिकतावादी जीवन दृष्टि का मराठी साहित्य में सर्वप्रथम आविष्कार हुआ। दूसरी ओर इस आन्दोलन ने प्रस्थापित साहित्य दृष्टि और आलोचना पर तीखे प्रहार करके प्रस्थापित साहित्यिक आदर्शों का खोखलापन साबित कर दिखाया।

लघु पत्रिका आन्दोलन कुछ सालों तक ही सक्रिय रहा लेकिन साठोत्तरी मराठी साहित्य पर उसने अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। किसी समय इस आन्दोलन से जुड़े दिलीप चित्रे, भालचन्द्र नेमाडे, चन्द्रकान्त पाटील, भाऊ पाध्ये आदि लेखक-कवि आज मराठी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर बन चुके हैं। नामदेव ढसाल, राजा ढाले जैसे महत्त्वपूर्ण दलित लेखकों ने भी कुछ हद तक इसी आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त की है। 'ग्रामीण साहित्य आन्दोलन' में विद्रोह का स्वर उतना स्पष्ट रूप से प्रतीत नहीं होता है। लेकिन मध्यवर्गीय साहित्य की सीमाओं को रेखांकित करते हुए आँचलिक जीवन और आँचलिक संवेदनशीलता को मराठी साहित्य में स्थापित करने का कार्य इस आन्दोलन ने किया है। इन सभी आन्दोलनों में साहित्यिक और सामाजिक विद्रोह की सबसे सशक्त धारा रही है 'दलित साहित्य'।

हजारों सालों से हमारी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था ने जिसका शोषण किया उस दबे हुए समाज स्तर की आवाज दलित साहित्य के रूप में मुखर हुई है। दलित साहित्य ने एक ओर जहाँ समूचे उच्चवर्णीय साहित्य को और साहित्य शास्त्र को आह्वान दिया है वहाँ दूसरी ओर साहित्य और समाज के अटूट सम्बधों को उजागर किया है। दलित साहित्य का विचार करते समय एक बात स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि यह केवल साहित्यिक आन्दोलन नहीं है। यह मूलतः एक सामाजिक आन्दोलन है। पिछड़े हुए समूहों द्वारा अपने मानवीय अधिकार प्राप्त करने के लिए किया गया यह संघर्ष है। सामाजिकता के साथ-साथ इसके आर्थिक, सांस्कृतिक और राजकीय पहलू भी हैं। इस आन्दोलन की सामाजिक बुनियाद को ध्यान में रखते हुए दलित साहित्य का विचार केवल साहित्यिक या कला की दृष्टि से करना पर्याप्त नहीं है। इसका विचार सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में ही ठीक तरह से किया जा सकता है। इसलिए दलित साहित्य की आलोचना सोशल-अंथ्रापॉलॉजिकल दृष्टिकोण से करना अनिवार्य है। मराठी में दलित साहित्य के बारे में सैद्धान्तिक चर्चा विपुल मात्रा में हुई है, हो रही है। इसी समीक्षा में कला

पक्ष की अपेक्षा सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ अधिक प्रभावी रहे हैं। इस समीक्षा को ध्यान में रखकर दलित साहित्य के बारे में कुछ प्रश्नों का विचार यहाँ करना है, जिनके आधार पर दलित साहित्य के यथार्थ स्वरूप का हम आकलन करते हैं। दलित साहित्य का निर्माण किस परिस्थिति में हुआ है? उसके निर्माण के कारण क्या हैं। उसकी निर्मिति सम्बन्धी प्रेरणा क्या है? दलित साहित्य क्या है? उसकी परिभाषा क्या की जा सकती है? ये कुछ प्रश्न हैं जो दलित साहित्य के स्वरूप का आकलन कराने में सहायक हो सकते हैं।

मराठी में दलित साहित्य का निर्माण डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर द्वारा चलाए गए सामाजिक आन्दोलन का परिणाम है। इसलिए डॉ. आम्बेडकर का आन्दोलन ही दलित साहित्य निर्मिति की सबसे प्रबल प्रेरणा है इसमें कोई दो राय नहीं हैं। लेकिन मेरे विचार से अगर हम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो हमारे इतिहास में विद्रोह की जो परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है उस परम्परा का ही एक आधुनिक आविष्कार दलित साहित्य के रूप में हुआ है ऐसा हम कह सकते हैं। हिन्दू संस्कृति का इतिहास है। एक परम्परा अधिसत्तावादी वर्ग की परम्परा है जिसे वैदिक या ब्राह्मण परम्परा कहा जाता है। दूसरी परम्परा जनसाधारण से जुड़ी हुई जिसे हम चार्वाक लोकायत (अर्थात् अब्राह्मणी) जनवादी परम्परा कह सकते हैं। इस जनवादी परम्परा ने हमेशा ब्राह्मण मूल्यों और ब्राह्मण अधिसत्तावाद के खिलाफ संघर्ष किया है। इस संघर्ष के विभिन्न आयाम प्राचीन काल में चार्वाक, लोकायत, बौद्ध, जैन दर्शन आदि पाए जा सकते हैं। कभी-कभी वैदिक परम्परा को कुछ हद तक स्वीकारते नाथ संप्रदाय, कबीर, गुरु नानक, तुकाराम इसके उदाहरण हैं। इसी बहुजन परम्परा में आधुनिक काल में हम महात्मा फुले और डॉ. आम्बेडकर के आन्दोलनों को भी देख सकते हैं। मराठी का दलित साहित्य इसी विद्रोही परम्परा का ही आविष्कार है।

अंग्रेजी उपनिवेशवाद के बाद हमारे यहाँ संस्कृतिसंयोग (इकल्चरेशन) की प्रक्रिया शुरू हुई और भारतीय समाज में एक मौलिक विचार परिवर्तन हुआ। अंग्रेजी उपनिवेश बनने के बाद ही हमारे समाज में बुद्धि प्रामाण्यवाद (रेशनॅलिज्म), व्यक्ति स्वातन्त्र्य, समता, सामाजिक न्याय आदि प्रजातंत्रों के आधारस्वरूपों का बीजारोपण हुआ। इन तत्त्वों के आधार पर हम हमारे परम्परागत मूल्य, व्यवस्था और आदर्शों का परीक्षण करने में मजबूर हुए और सामाजिक पुनर्रचना के हेतु एक नए सुधारवादी आन्दोलन का जन्म हुआ। राजा राममोहन राय इस सुधारवाद के प्रारम्भ बिन्दु माने जा सकते हैं। महाराष्ट्र में न्या. रानडे और गोपाल गणेश आगरकर इस सुधारवाद के अग्रणी थे। लेकिन महाराष्ट्र के बहुतांश सुधारवादी नेता अपनी ब्राह्मणवादी मानसिकता के कारण सुधारवाद को एक विशाल सामाजिक रूप देने में सफल नहीं हो पाए। इन ब्राह्मणवादी सुधारकों की तीखी आलोचना महात्मा ज्योतिराव फुले ने

की है। महात्मा फुले की विचारधारा आधुनिक महाराष्ट्र में अब्राह्मण संवेदनशीलता का पहला सशक्त आविष्कार है। रेशनॅलिज्म से प्रेरित बहुजनवादी विद्रोह के रूप में महात्मा फुले के आन्दोलन को देखा जा सकता है। महाराष्ट्र के वह पहले ऐसे सुधारक हैं जिसमें विचार और कर्म का संयोग हुआ था। शूद्र, अतिशूद्र, स्त्रियों और किसानों की आवाज महात्मा फुले के रूप में बुलंद हुई थी। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण और शोषण करनेवाली अधिसत्ता के खिलाफ विद्रोह यह महात्मा फुले के विचारों का केन्द्र था। धर्म की आड़ में चलने वाले ब्राह्मण अधिसत्तावाद पर उन्होंने तीखे प्रहार किए और साथ-ही-साथ दासत्व में ही सन्तोष माननेवाली पिछड़े वर्गों की दुर्बल मानसिकता पर भी महात्मा फुले ने कठोर हमला किया और इन वर्गों में जागृति लाने की कोशिश की। इसलिए कहा जा सकता है कि आज का दलित साहित्य जिस वैचारिक धरोहर पर खड़ा है उसकी बुनियाद महात्मा फुले द्वारा डाली गई है। यही कारण है कि कुछ दलित आलोचकों ने महात्मा फुले को दलित साहित्य का ऊर्जा केन्द्र माना है। डॉ. आम्बेडकर से पहले भी कुछ दलित सुधारकों ने महात्मा फुले से प्रभावित होकर दलितों में सामाजिक सुधार लाने का कार्य शुरू किया था। लेकिन समूचे दलित वर्ग को जागृत करके उसको उत्थान की ओर ले जाने का श्रेय डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर के आन्दोलन को ही दिया जाता है।

डॉ. आम्बेडकर स्वयं महात्मा फुले के विचारों से प्रभावित थे। महात्मा फुले को गुरु मानते हुए आम्बेडकर ने अपने आन्दोलन का नाता फुले की विचारधारा से जोड़ दिया। डॉ. आम्बेडकर का आन्दोलन दलितों के लिए *न्याय-मानवीय अधिकारों* की प्राप्ति का आन्दोलन था। सामाजिक न्याय प्राप्ति के साथ-साथ दलितों का आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक विकास का भी उद्देश्य था। इसलिए आम्बेडकरी आन्दोलन के कई आयाम थे। एक ओर दलितों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास डॉ. आम्बेडकर ने किया तो दूसरी ओर दलितों का राजकीय सत्ता में सहयोग हो इसलिए 'शैड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' जैसे राजकीय दल की स्थापना की।

दलितों को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए महाड़ का सत्याग्रह, मन्दिर प्रवेश का सत्याग्रह जैसे प्रतीकात्मक आन्दोलन भी किए। डॉ. आम्बेडकर का वर्ण के विरोध में यह संघर्ष बौद्ध धम्म स्वीकृति के रूप में चरम सीमा पर पहुँचा। दलितों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए डॉ. आम्बेडकर ने पीपल्स एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना की। इस संस्था द्वारा पूरे महाराष्ट्र में स्कूल और महाविद्यालय खोले गए। औरंगाबाद में स्थापित मिलिंद महाविद्यालय आगे चलकर दलित साहित्य आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना रहा। इस प्रकार डॉ. आम्बेडकर द्वारा चलाए गए आन्दोलन ने जहाँ दलितों में संघर्ष शक्ति का निर्माण किया, वहाँ दलितों में आत्मसम्मान और स्वत्वबोध की भावना को भी जागृत किया। दलितों की यह

संघर्षशीलता और स्वत्वबोध की जागृति दलित साहित्य के निर्माण का कारण बनी। इसलिए डॉ. आम्बेडकर का यह विद्रोही आन्दोलन ही दलित साहित्य की साक्षात प्रेरणा है। स्वातन्त्र्य, समता, न्याय आदि मूल्यों पर आधारित डॉ. आम्बेडकर की विचारधारा ही दलित साहित्य का प्रमुख केन्द्र है। इसलिए यह देखा जाता है कि डॉ. आम्बेडकर प्रायः सभी दलित कवियों की कविता का मुख्य विषय बन गए हैं। हर कवि ने कविता के रूप में उनको अभिवादन किया है।

कुछ दलित लेखकों और आलोचकों ने आम्बेडकर की विचारधारा के साथ-साथ मार्क्सवाद को भी दलित साहित्य की प्रेरणा माना है। लेकिन अधिकांश दलित लेखकों का यह मानना है कि मार्क्सवाद दलित साहित्य की प्रेरणा नहीं हो सकता। क्योंकि मार्क्सवाद सिर्फ वर्ग-आधारित आर्थिक शोषण का विचार करता है, वर्ण-आधारित सामाजिक विषमता का और शोषण का विचार मार्क्सवाद में नहीं है। कुछ दलित आलोचकों ने नीग्रो साहित्य को भी (ब्लेक लिटरेचर) दलित साहित्य की प्रेरणा के रूप में माना है। नीग्रो साहित्य और दलित साहित्य में कुछ समानता अवश्य है लेकिन दलित साहित्य का निर्माण नीग्रो साहित्य के प्रभाव में हुआ है यह कहना उचित नहीं होगा। इसलिए अन्ततः दलित साहित्य डॉ. आम्बेडकर के विद्रोही आन्दोलन का ही परिणाम है, यही निष्कर्ष निकालना पड़ता है।

दलित साहित्य का निर्माण किस परिस्थिति के कारण हुआ है और उसकी निर्मिति प्रेरणा क्या है इसके बारे में की गई यह चर्चा दलित साहित्य का स्वरूप समझ लेने के लिए सहायक सिद्ध होती है। दलित साहित्य की प्रारम्भिक समीक्षा में दलित साहित्य का स्वरूप निश्चित करने का, उसकी परिभाषा करने का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है। दलित या पूर्व-अस्पृश्य जाति के लेखक द्वारा लिखा गया और दलितों के जीवन का चित्रण करने वाला साहित्य दलित साहित्य है इस तरह की एक परिभाषा की जा सकती है। लेकिन यह परिभाषा पर्याप्त नहीं है। क्योंकि यह परिभाषा अतिव्याप्त है। दलित जीवन का चित्रण उच्चवर्णीय लेखक भी अपने साहित्य में करते आ रहे हैं लेकिन उनके लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य नहीं कहा जाता। दूसरी ओर दलित जाति के सभी लेखकों का साहित्य भी दलित साहित्य नहीं है। उदाहरणतः संत चोखामेला दलित जाति के थे लेकिन उनके द्वारा लिखे गए भक्तिकाव्य को दलित साहित्य नहीं कहा जा सकता। दलित लेखक के आधार पर अगर हम दलित साहित्य की परिभाषा करने लगेंगे तो और एक प्रश्न खड़ा होता है दलित या पिछड़ा किसे कहा जाए? मराठी दलित साहित्य के सन्दर्भ में इस प्रश्न की भी चर्चा हुई है। इस प्रश्न के उत्तर में दो पक्ष सामने आते हैं। एक पक्ष यह है कि जाति-आधारित समाज व्यवस्था में जिसका शोषण हुआ है उसे ही दलित कहा जाए। वर्णाश्रमव्यवस्था में जिसे शूद्र या अछूत माना गया था वह ही दलित है। दूसरा पक्ष यह है कि समाज के सभी पिछड़े वर्गों को चाहे उनका वर्णीय शोषण हुआ हो

या वर्गीय शोषण हुआ हो—दलित संज्ञा दी जानी चाहिए। इस दूसरे पक्ष के अनुसार शूद्रों के साथ-साथ भूमिहीन मजदूर, कामगार, आदिवासी आदि सभी सर्वहारा दलित हैं। लेकिन क्या आदिवासी लेखक का साहित्य भी दलित साहित्य है? मजदूरों के शोषण का चित्रण करनेवाला मार्क्सवादी साहित्य भी दलित साहित्य कहा जाएगा? क्या नारायण सुर्वे जैसे श्रमजीवी वर्ग से उभरे हुए कवि को दलित कवि मानना उचित है? इन प्रश्नों के ठोस उत्तर दलित साहित्य के आलोचक नहीं दे पाए हैं।

इससे यह बात जाहिर होती है कि केवल लेखक किस जाति का है इस प्रश्न के आधार पर हम दलित साहित्य की परिभाषा नहीं कर सकते। दलित साहित्य की अगर यथार्थ परिभाषा हमें करनी है तो साहित्य में व्यक्त होनेवाली जीवन दृष्टि या वैचारिकता क्या है, इसके आधार पर ही हम कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिस साहित्य में दलित संवेदनशीलता (सेन्सिबिलिटी) का आविष्करण होता है यह 'दलित साहित्य' है। यहाँ फिर प्रश्न उठता है कि दलित सेन्सिबिलिटी क्या है? दलित सेन्सिबिलिटी की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—सामाजिक शोषण से उपजी सर्वहारा की वेदना और शोषण व्यवस्था के विरुद्ध किया गया विद्रोह। वेदना और विद्रोह की इन दो संज्ञाओं में दलित साहित्य का समूचा स्वरूप समाया गया है।

आशयतः दलित साहित्य शोषितों, पीड़ितों के दुःखों और वेदनाओं का वर्णन करता है। वर्ग-आधारित समाज व्यवस्था ने जिनको अपने मानवीय अधिकारों से वंचित किया है और जिन्हें अवमानित जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किया है उनकी मजबूरी का और आक्रोश का चित्रण दलित साहित्य में पाया जाता है। दलित साहित्य में भूख, दरिद्रता, शोषण, अन्याय आदि बातें आशय का प्रमुख अंग बनके आती हैं। इसलिए दलित साहित्य में विशेषतः कविता में—अन्धेरे की प्रतिमा बार-बार आती है—जो अन्धेरा दलित जीवन का प्रतीक है।

लेकिन केवल अन्धेरे का, दुःख और पीड़ा का चित्रण करना यही दलित साहित्य का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। अंधकार से उठकर प्रकाश की ओर जाने की उत्कट आकांक्षा उसमें प्रतिबिम्बित होती है। इसलिए जिस व्यवस्था ने इस दुःख, पीड़ा और अमानुषता को जन्म दिया है उस व्यवस्था को नकारना, उसके खिलाफ संघर्ष करना यह दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। प्रसिद्ध दलित लेखक बाबूराव बागुल के मतानुसार दलित साहित्य मानव की मुक्ति युद्ध का साहित्य है। दलित साहित्य का विद्रोह दो अंग होते हैं, एक नकारात्मक और दूसरा सकारात्मक या भावात्मक। विद्रोह किसी व्यवस्था को, विचारों या मूल्यों को नकारता है लेकिन यह नकार किसी नई व्यवस्था की और मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए होता है। दलित साहित्य किन बातों को नकारता है? दलित साहित्य पूरी समाज व्यवस्था को जो विषमता के तत्त्व पर आधारित है—नकारता है। शोषण का समर्थन करनेवाले मूल्यों

और संकल्पनाओं को नकारता है। इसलिए ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म आदि संकल्पनाओं और कर्म सिद्धान्त जैसे सिद्धान्तों से दलित साहित्य का विरोध है। किसी भी भाववादी दर्शन का उनका विरोध है। दलित लेखकों के अनुसार हिन्दुओं के सभी धर्मग्रन्थ प्रायः उच्चवर्णीय आदर्शों को जताने वाले और विषमता का समर्थन करने वाले हैं। इसलिए दलित साहित्य इन धर्मग्रन्थों को भी नकारते हैं। दलित विद्रोह का यह स्वरूप निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो सकता है। केशव मेश्राम अपनी कविता में लिखते हैं–

मेरे जन्मदिन पर मैंने परमेश्वर को गाली दी
...शब्दों की फटकार लगाते हुए कहा
ओ साले! रोटी के एक टुकड़े के लिए
गाड़ी भर लकड़ियाँ तोड़ेगा क्या?
बाप की शराब के एक घूँट के लिए
भड़वेगिरी करेगा क्या? ('उत्खनन' से)

नामदेव ढसाल की कविता में विद्रोह का यह स्वर अधिक तीव्र हो जाता है। एक कविता में नामदेव ढसाल लिखते हैं–

मैं तुम्हें गालियाँ देता हूँ, तुम्हारी किताबों को
तुम्हारी संस्कृति को गालियाँ देता हूँ।
तुम्हारे पाखंडीपन को गालियाँ देता हूँ।
ईव्हन, मैं माँ-बाप को गालियाँ देता हूँ
...यहाँ जनम लेकर तुम भी बरबाद हुए
और मुझे भी बरबाद किया जनम देकर। ('गोल पिठा' से)

इस प्रंकार दलित साहित्य प्रस्थापित व्यवस्था के सभी आदर्शों के खिलाफ विद्रोह करता् है। प्रस्थापित साहित्यिक आदर्शों और मान्यताओं तथा प्रस्थापित साहित्यशास्त्र या सौन्दर्यशास्त्र को भी दलित साहित्य नकारता है। रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों की महानता पर भी दलित साहित्य प्रश्नचिह्न लगाता है। वाल्मीकी पर लिखी गई एक कविता में कवि दया पवार कहते हैं कि यहाँ का हर महाकवि भी बौना होता है। दलित लेखकों का यह मानना है कि मराठी का प्रस्थापित साहित्यशास्त्र दलित साहित्य के आकलन और मूल्यांकन के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए एक नए दलित सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना करना आवश्यक है। दलित साहित्य की समीक्षा में इन आवश्यकताओं को बार-बार रेखांकित किया गया है लेकिन ऐसा कोई दलित सौन्दर्यशास्त्र आज तक मराठी में निर्माण नहीं हुआ है।

दलित विद्रोह का यह नकारात्मक स्वरूप देखने से उसका भावात्मक पक्ष भी स्पष्ट होता है। यह भावात्मक पक्ष दलित साहित्य में व्यक्त होनेवाली जीवन दृष्टि और वैचारिकता के रूप में प्रतीत होता है। दलित साहित्य में प्रतिबिंबित यह जीवन

दृष्टि अनीश्वरवादी, अनात्मवादी और इहवादी है। समता, स्वालम्ब, बुद्धिप्रामाण्य और विज्ञाननिष्ठा इस जीवन दृष्टि के आधारभूत तत्त्व हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि क्रान्तिकारी मानवतावाद दलित जीवन दृष्टि का मुख्य आधार है। यह जीवन दृष्टि महात्मा फुले और डॉ. आम्बेडकर की विचारधारा से प्रेरित है। इस जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य दलित साहित्य है।

पिछले चालीस सालों में मराठी दलित साहित्य का जो विकास हुआ है उसको अगर विभिन्न साहित्य-विधाओं को लेकर देखा जाए तो सर्वप्रथम यह बात सामने आती है कि अन्य साहित्य विधाओं की तुलना में कविता दलित साहित्य की सबसे सशक्त और समृद्ध विधा है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए दलितों ने कविता का ही उपयोग अधिक मात्रा में किया है। वेदना और विद्रोह की तीव्रतम अभिव्यक्ति दलित कविता में ही पाई जा सकती है। काव्य शैली, भाषा और शिल्प सौन्दर्य को दलित कविता में ज्यादा महत्त्व नहीं दिया गया है। सामाजिक आशय का जोशपूर्ण आविष्कार यही इस कविता का सामर्थ्य है। इसलिए कविता का कलापक्ष कभी-कभी कमजोर पड़ा है और कविता कभी-कभी गद्य शैली के बहुत निकट आती हुई दिखाई पड़ती है। दलित कविता का सबसे श्रेष्ठ आविष्कार नामदेव ढसाल के काव्यसंग्रह 'गोल पिठा' में पाया जाता है। नामदेव ढसाल और प्रकाश जाधव की कविता बम्बई जैसे महानगरों में बसी दलित बस्तियों और वहाँ के दलित जीवन का चित्रण करती है। नामदेव ढसाल एक सम्पूर्ण विद्रोह का प्रभावशाली आविष्कार है। 'स्वतन्त्रता किस गधी का नाम है', यह प्रश्न अपनी कविता द्वारा पूछने वाले इस कवि ने हमारी पूरी व्यवस्था में छिपी अमानुषता को उजागर किया है। ढसाल की कविता ने काव्य भाषा की संकल्पनाओं को ही बदल डाला है। जो भाषा और शब्द काव्य या साहित्य के क्षेत्र में निश्चित माने गए थे उसी भाषा और शब्दों को ढसाल ने श्रेष्ठतम काव्य का रूप दिया है। सामाजिक आशय और काव्यात्मकता का ऐसा संयोग नामदेव ढसाल की कविता को छोड़कर दलित कविता में अन्यत्र नहीं पाया जाता।

नामदेव ढसाल के साथ-साथ दलित कविता में अन्य महत्त्वपूर्ण नाम इस प्रकार हैं—केशव मेश्राम, दया पवार, यशवंत मनोहर, प्रहलाद चेक्वणकर, गमन निबांधकर, त्र्यंबक सपकाक, मुजंग मेश्राम, ज.वि.पवार आदि। दलित कविता के साथ-साथ दलित कवियित्रियों का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। इनमें हिरा वनसोड, ज्योति लांजेवार, मल्लिका अमरशेख, प्रज्ञा लोखंड आदि नाम उल्लेखनीय हैं। विशेषतः मल्लिका अमरशेख आज की एक महत्त्वपूर्ण कवियित्री मानी जा सकती हैं।

कविता के बाद दलित साहित्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतिकरण आत्मकथाओं के रूप में हुआ है। सालों तक उपेक्षित से रहे इस साहित्य प्रकार को जब दलित लेखकों ने आत्माभिव्यक्ति के लिए अपनाया तो आत्मकथा की विधा को एक नया आयाम प्राप्त हुआ, जिससे आलोचनात्मक मान्यताओं और लोकप्रियता के चोटी पर

यह विधा पहुँच गई। 'उपरा' (लक्ष्मण माने), 'बलुत' (दया पवार), 'आठवणीचें पक्षी (प्रल्हाद सोनकांबले), 'अक्कुरमाशी' (शरणकुमार लिंबाले), 'गावकी' (रूस्तम अचलखांव) आदि आत्मकथाएँ विभिन्न जाति-जमातियों के सर्वहारा युवकों की कहानी सुनाती हैं और पाठकों को अनोखे अनुभव क्षेत्र का दर्शन कराकर उसे अंतर्मुख कर देती हैं। दलित कविता में जहाँ विद्रोह का स्वर ऊँचा है, वहाँ दलित आत्मकथाओं में दुःखों और वेदनाओं का चित्रण प्रमुख है। भूख, दरिद्रता, सामाजिक अवमानना का चित्रण करती हुई ये आत्मकथाएँ आज तक अनछुए और अनदेखे यथार्थ को उजागर कर देती हैं।

दलित कहानी भी मराठी में अपनी अलग सी पहचान बनाने में सफल हुई है। दलित कहानीकारों में सबसे बड़ा नाम बाबूराव बागूल का है। उनके 'मरण स्वस्त होत आहे' (मौत सस्ती हो रही है) और 'जेव्हा मी जात चोरली होती' (जब मैंने अपनी जाति को छुपाया) यह दो कहानी संग्रह केवल दलित कहानी के ही नहीं मराठी कहानी के भी मानदण्ड माने जा सकते हैं। वेदना और विद्रोह की इतनी जोशपूर्ण अभिव्यक्ति अन्य किसी दलित कहानीकार की कहानियों में नहीं हो सकी है। अमिताभ, अर्जुन डांगले, योगिराज वाघमारे, वामन होवाल, योगेंद्र मेशम आदि लेखकों ने भी दलित कहानी के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दलित नाटक और एकांकिका के क्षेत्र में प्रेमानंद राजवी, दत्त भगत, टेक्सास गायकवाड़ आदि नाम उल्लेखनीय हैं। प्रस्थापित मराठी रंगमंच से अपनी एक अलग पहचान बनाने की कोशिश दलित रंगभूमि द्वारा की जा रही है और एक आन्दोलन के रूप में दलित रंगमंच महाराष्ट्र में आज सक्रिय हो रहा है। जहाँ कहानी और आत्मकथा की विधा में दलित साहित्य अपनी चरम सीमाओं तक पहुँचा है वहाँ उपन्यास जैसी विधा दलित साहित्य में बिलकुल ही उपेक्षित रही है। जिसके कारण कोई भी उपन्यास दलित साहित्य में अभी तक निर्मित नहीं हुआ है। जो दलित साहित्य सामाजिक यथार्थ की उपज है और जिसने यथार्थवादी धारणाओं को बढ़ावा दिया है उस दलित साहित्य में उपन्यास जैसी यथार्थवादी साहित्य विधा का न के बराबर होना एक अचरज की बात लगती है।

साठ और सत्तर के दशक में दलित साहित्य अपना पूरा सामर्थ लेकर किसी तूफान की तरह मराठी में दाखिल हुआ। लेकिन यह तूफान आज धीमा पड़ गया है। दलित साहित्य के प्रवाह में पिछले 10-15 साल में कुछ अवरोध-सा आ गया है। दलित साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण रचनाकार साठ और सत्तर के दशक में ही निर्मित हुए और जिन्होंने सिर्फ दलित साहित्य पर ही नहीं पूरे मराठी साहित्य पर अपना प्रभाव डाला। लेकिन ऐसा कोई प्रभावशाली रचनाकार पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में आगे आया दिखाई नहीं देता। दलित साहित्य में आए हुए इस अवरोध को अनेक दलित लेखक और आलोचक आज महसूस कर रहे हैं। लेकिन इस अवरोध के क्या

कारण हैं इसकी चर्चा जिस गम्भीरता से होनी चाहिए वैसी होती नहीं दिखाई देती। दलित साहित्य में पैदा हुए इस अवरोध के कुछ कारणों का निर्देश यहाँ हम कर सकते हैं।

पहली बात यह है कि दलित साहित्य मूलतः एक सामाजिक आन्दोलन के माध्यम के रूप में निर्माण हुआ है। दलित पैंथर जैसे आन्दोलन जब सक्रिय थे उस समय दलित साहित्य भी अपने पूरे जोश में था। लेकिन आज दलितों के सभी आन्दोलन ठंडे पड़ चुके हैं। सिद्धान्त के लिए संघर्ष करना बंद होकर दलित आन्दोलनों का राजनीतिकरण हो गया है। प्रस्थापित राजनैतिक पार्टियों ने दलित नेतृत्व को सत्ता में कुछ स्थान देकर उनके विद्रोही आन्दोलनों को दबा दिया है। सैद्धान्तिक और संघर्षशील आन्दोलनों के अभाव में दलित साहित्य निर्माण का प्रेरणास्रोत ही नष्ट-सा हो गया है। किसी भी विद्रोही आन्दोलन की अन्तिम परिणति यह होती है कि प्रस्थापित व्यवस्था के खिलाफ वह संघर्ष करता है लेकिन कुछ सालों बाद वह ही प्रस्थापित बन जाता है। दलित साहित्य आज प्रस्थापित हो चुका है और उसका विद्रोही स्वर आज धीमा पड़ चुका है।

दलित साहित्य में अवरोध पैदा होने का एक और कारण है। दलित साहित्य की विषयवस्तु या कथ्य और अभिव्यक्ति की पद्धतियों में पुनरावृत्ति हो रही है, विविधता और नएपन के अभाव में दलित साहित्य का भी एक ढाँचा बन चुका है। अनुभव विश्व की ये मर्यादाएँ दलित साहित्य के अवरोध का कारण बन चुकी हैं।

कोई भी अच्छा साहित्य ठोस वैचारिकता के धरातल पर ही खड़ा हो सकता है। लेकिन कोई भी आइडियालॉजी साहित्य के लिए तब तक फलदायी सिद्ध हो सकती है जब तक वह यथार्थ के योग्य आकलन में उपयुक्त होती है। जब आइडियालॉजी और सिद्धान्त यथार्थ पर हावी होते हैं, यथार्थ को इसके चौखटे में डालने का उल्टा प्रयास शुरू होता है, तब लेखक का यथार्थबोध ही विकृत हो सकता है। तब साहित्य यथार्थबोधक न रहकर अमूर्त सिद्धान्तों का केवल स्पष्टीकरण मात्र बन जाता है। मेरे ख्याल से आज दलित साहित्य के सामने यह धोखा खड़ा है। समकालीन यथार्थ में आए बदलाव को समझने में आज के दलित लेखक नाकामयाब हो रहे हैं। हमारे परिवेश में पिछले दस-पन्द्रह सालों में जो नया क्रायसिस पैदा हुआ है, दलित लेखक कुछ हद तक इससे बेखबर हैं। ग्लोबलाइजेशन शुरू होने के बाद आइडेंटिटी अस्मिता के नए प्रश्न हमारे सामने खड़े हुए हैं। पूँजीवाद का रूप बदला है, शोषण-व्यवस्था का रूप और शोषण के तरीके बदल चुके हैं। यहाँ के उच्चवर्णीय अधिसत्तावाद की जगह एक अन्तरराष्ट्रीय अधिसत्तावाद हमारे सर पे आ खड़ा हुआ है। इस नए अधिसत्तावाद को और शोषण के बदलते हुए स्वरूप को दलित लेखक देख नहीं रहे हैं। सिर्फ वर्ण-आधारित विषमता की समस्या को ही उसी पुराने ढंग से दुहरा रहे हैं। साहित्यिक अवरोध का यह एक बड़ा कारण है।

इन सभी मर्यादाओं को जानते हुए भी दलित साहित्य ने मराठी साहित्य को जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है उसको नकारा नहीं जा सकता। दलित साहित्य ने मराठी साहित्य को मानवतावादी आयाम दिया है। सभी आकृतिवादी और कलावादी साहित्य सिद्धान्तों को उसने परास्त किया है। साहित्य और सामाजिक परिवेश के अटूट सम्बन्धों को स्थापित किया है। मराठी में यथार्थवादी साहित्य को बढ़ावा दिया है। साहित्यिक भाषा के रूढ़ मानकों को तोड़कर भाषा की दृष्टि से भी मराठी साहित्य को समृद्ध किया है। नामदेव ढसाल की कविता, बाबूराव बागूल की कहानियाँ तथा सोनकांबले की 'आठवणीचे पक्षी' आत्मकथा आदि श्रेष्ठ साहित्य-कृतियाँ दलित लेखकों ने मराठी को दी हैं। वास्तव में मराठी साहित्य का चेहरा दलित साहित्य ने बदला है।